

वेदान्त साधना की षड्संपत्ति का मानव जीवन में महत्व

आशीष मल्हान, शोध छात्र, श्री वे.वि.वि.उ.प्र.

डॉ.सोमवीर आर्य, शोध निर्देशक, श्री वे.वि.वि.उ.प्र.

रितु रानी, शोध छात्रा, श्री रावतपुरा सरकार वि.वि.रायपुर

रामनारायण मिश्र, शोध छात्र, म.गा.चि.ग्रा.वि.वि.चित्रकूट सतना म.प्र.

प्रस्तावना— वेदान्त में आत्मा को नित्य, मुक्त, विशुद्ध चैतन्य एवं अनश्वर कहा गया है, परन्तु जब यह स्वयं को शरीर, मन व इन्द्रिय से एकाकार कर लेती है, तब यह बंधन ग्रस्त हो जाती है क्योंकि आत्मा, शरीर, मन, ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियो से सदैव मुक्त रहती है। अज्ञानता के कारण जब व्यक्ति अपनी आत्मा को इनसे मिला देती है, तब वह बन्धन में पडकर शरीर, मन एवं इन्द्रियों के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझकर हमेशा परेशान रहती है।

जिस प्रकार पिता अपनी संतानों के सुख दुःख को अपना सुख-दुःख समझ लेता है, उसी प्रकार अविद्या के कारण आत्मा मोह वष शरीर, मन व इन्द्रियों के सुख-दुःख को स्वयं का सुख-दुःख मान लेती है, जो बंधन का मूल कारण है। इस अपनेपन का भाव ही दुःखों का मूल कारण है। जिससे आत्मा भी दुःख की अनुभूति करती है और आत्मा स्वयं को अंधा, दुर्बल समझती है। अज्ञानतावश जीव अपने मूल स्वरूप को भूल कर ऐसे कर्मों को करती है, जो बंधन में डालती है क्योंकि व्यक्ति को कर्मों का भुगतना करना पड़ता है और वह जन्म-मरण के चक्कर में फँसकर बंधनों को भोगता है। इन बंधनों से मुक्ति के लिए वेदान्तिक साधना को जीवन में अपनाकर अज्ञानता से मुक्त होकर सत्य को आत्मसात कर सकता है। जो निम्नवत है—

बहिरंग साधना—

1. विवेक— 'नित्यानित्य वस्तुविवेक' अर्थात् साधक को नित्य व अनित्य वस्तुओं में भेद करने की क्षमता होनी चाहिए, नित्य वस्तु एकमात्र ब्रह्म है ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त जगत अनित्य है, मिथ्या है। अतः सत्यवस्तु ब्रह्म का निश्चय कर लेना विवेक है। विवेक एक चमत्कारिक शक्ति है। जिसके प्रयोग से व्यक्ति का कभी पतन नहीं हो सकता। ऐसा व्यक्ति ही कुशल, सुखमय एवं शांतिमय जीवन व्यतीत करता है। वही विवेकहीन मनुष्य संसार में परेशान एवं दुखी रहता है।

विवेकी पुरुष नियमित व उचित आहार विहार के पालन से शरीर, इन्द्रिय एवं मन को सत्वोगुण से परिपूर्ण बनाकर मन को निर्मल, प्रसन्न और चेतना की वृद्धि करता है और चेष्टा, कर्म, स्वप्न, जागरण से जीवन में आने वाले दुःखों का नाश कर सकता है। अतः विवेकी पुरुष जीवन में इनके संयम पूर्वक पालन करने से उन्नति को प्राप्त करता है। किन्तु अविवेकी व्यक्ति इनके संयम न करने से रोगग्रस्त रहता है। विवेक के कारण दुःखमय संसार से मुक्त होने योग्य बनते हैं।

2. वैराग्य— 'इहं भुत्रार्थ भोग विराग' इसमें साधक को लौकिक व पारलौकिक भोगों की कामना का परित्याग करना चाहिए। शास्त्रों में कथन है कि विवेकी पुरुष शौच के पालन से उसे स्वयं के शरीर से जुगुप्सा का भाव उत्पन्न होने लगता है, और उसका दूसरों से आसक्ति समाप्त हो जाती है। वैराग्य दो प्रकार का होता है—

क. कारण वैराग्य जो कुछ विपत्तियों के कारण होता है।

ख. विवेकपूर्ण वैराग्य जो सत् व असत् वस्तु के विवेक से उत्पन्न होता है।

मनुष्य को प्रथम वैराग्य से मन केवल अवसर की प्रतीक्षा करता है और मौका मिलते ही पूर्व में त्यागे हुए पदार्थों को फिर भोगने से उसका पतन होकर पूर्वावस्था में चला जाता है, परंतु दूसरे में पुरुष विवेक के कारण पदार्थ भोग को त्यागकर आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति को प्राप्त करता है। अतएव इहलौकिक तथा पारलौकिक भोगों से उपराग या वीतराग हो जाना ही वैराग्य है।

3. षड्संपत्ति— शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान इन छः साधनों को षड्संपत्ति कहते हैं।

- शम— शम का तात्पर्य है अतिन्द्रिय का निग्रह कर लेना। मन के निग्रह से ही इन्द्रियों का निग्रह संभव होता है। मन का निग्रह संसारिक व आध्यात्मिक सफलता में अनिवार्य है। इससे मन सूक्ष्म दिव्य ज्योति स्वरूप तेजस्वी वेगवान सधे हुए घोड़े के समान आनन्दायक तथा गन्तव्य स्थान (मोक्ष) तक ले चलने वाला हो जाता है।
 - दम— दम का अर्थ है दमन करना। अर्थात् चक्षु कर्ण आदि इन्द्रियों को विषयों से हटा लेना दम है। मनु ने कहा है कि अध्यात्म मार्ग के पथिक अनुचित कार्यों या दुश्चारितों वाले विषयों की ओर ले जाने वाली इन्द्रियों को बड़े यत्न के साथ नियंत्रण कर अपने गन्तव्य मार्ग पर ले जाकर अनुचित विषयों में प्रभावित इन्द्रियों को निग्रह करके ब्रह्मचिंतन में लगाए रखता है, यही दम है।
 - उपरति— उपरति का तात्पर्य उपराम या विरति हो जाना है। वस्तु की प्राप्ति हो जाने पर भी उदासीन भाव धारण करना उपरति है, इन्द्रियों को विषयों से हटाकर सब कामनाओं से शून्य हो जाना उपरति है, संसार में अनासक्त भाव से रहना ही उपरति है।
 - तितिक्षा— समस्त द्वन्द्वों को सहन करते हुए अपने ध्येय या लक्ष्य प्राप्ति के लिए साधना में लगे रहना तितिक्षा है। कथन है कि 'शीतोष्णसुख दुःखादित सहिष्णुत्वम्'। शीत, उष्ण, सुख, दुःख, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों को धैर्य पूर्वक धारण कर लेना ही तितिक्षा है।
 - श्रद्धा— वेद, वेदान्त व गुरु वाक्यों में दृढ़ निष्ठा एवं अटल विश्वास का नाम श्रद्धा है। यदि मनुष्य यह विश्वास करे कि परमेश्वर असीम आनन्द दाता है, तब वह उसे प्राप्त कर सकता है— 'संशया विनश्यति' अर्थात् व्यक्ति को संशय रहित निश्चयात्मक होना चाहिए क्योंकि यही उत्थान का हेतु है, यही श्रद्धा है।
 - समाधान— चित की एकाग्रता का नाम ही समाधान है। चित में अनेक प्रकार के मल विक्षेप व आवरण के कारण सदा चलायमान रहता है, परन्तु चित्त से मल दूर हो जाने पर वह स्वस्थ, एकाग्र हो जाता है। साधक ज्ञान चक्षु के द्वारा अज्ञान रूप आवरण को दूर करके परमेश्वर (सत्) में अपने चित को निरंतर स्थापित करने का अभ्यास करता है अतः अभ्यास व वैराग्य के द्वारा मन काबू में लाकर उसे ब्रह्म में स्थिर करना समाधान है।
4. मुमुक्षुत्व— बाह्य एवं आंतरिक जगत में सफलता के प्रति तीव्र इच्छा ही सफलता की कुंजी है। व्यक्ति संसार में भोगों को इतने लम्बे समय से भोगता आ रहा है फिर भी उसे सुख व आनंद की प्राप्ति नहीं होती है। यदि उसे

तीव्र इच्छा होती है कि उसे आनंद को पाना है जो कभी समाप्त न हो तो वह उस सत्य ब्रह्म की खोज करके उसको अवश्य पा लेगा।

अन्तरंग साधना—

5. श्रवण— वेद, योगशास्त्रों आदि को सुनना तथा गुरु के उपदेशों को ध्यान से सुनना। वास्तव में ब्रह्म ही एकमात्र सत् है जो सृष्टि के सभी युगों में विद्यमान रहते हैं। इस ज्ञान को श्रवण करना ही श्रवण कहलाता है।
6. मनन— ब्रह्मविद् गुरु के मुख से ब्रह्म के विषय में श्रवण किया हुआ, विषय को अपने अन्तःकरण में निश्चय कर लेना मनन कहलाता है। इनके विषय में उनके मन में उठने वाली शंकाओं का समाधान होना अनिवार्य है।
7. निदिध्यासन— जब साधक गुरु द्वारा दिए गए उपदेशों के प्रति उठने वाली शंकाओं का समाधान कर लेता है। तब उसे गुरु मंत्र देते हैं। इस मंत्र पर उसे ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। तुम्ही ब्रह्म हो, साधक को इस मंत्र पर सतत ध्यानस्थ रहना चाहिए। जिससे साधक को ज्ञान हो जाता है कि 'वह ब्रह्म है' तब वह बंधन से मुक्त हो जाता है। आत्मज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है। आत्मा व ब्रह्म एक ही है। इसलिए जब साधक अपने वास्तविक ज्ञान को प्राप्त कर लेता है तब वह ब्रह्म को भी जान लेता है। अतः उसे आत्मा और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं देख पड़ता है, अतः आत्मज्ञान ही मोक्ष है।

षड्संपत्ति का महत्व— योग साधना में छः प्रकार की संपत्ति होना आवश्यक है। मन भी एक अग्नि है, यह लाभकारी और हानिकारक दोनों है। निर्भर करता है कि इसका उपयोग किस प्रकार से करते हैं। यदि अपने लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए विवेक के द्वारा मन को सही दिशा में ले जाते हैं। तब वह हमारे लिए लाभकारी होगा। यदि लक्ष्य से विहीन होकर विपरीत दिशा में गमन करते हैं तब वह दुखदायी होता है।

अतः साधक को विवेक के द्वारा उचित-अनुचित कार्यों को देखकर करते हैं। जैसा कहा गया है कि परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्व दिया जाता है अर्थात् विवेक के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके वैराग्य के द्वारा उसे छोड़ देते हैं। जिससे अपने लक्ष्यों को ध्यान में रखकर आगे बढ़ सके। ब्रह्म साक्षात्कार के लिए शमदिषड्क को भी महत्वपूर्ण साधन माना गया है। शमदिषड्क के अर्न्तगत शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा को परिगणित किया गया है। इनका वर्णन निम्नवत है—

शम— शम का तात्पर्य है कि शान्ति व भीतरी इन्द्रियों का निग्रह कर लेना इसलिए कहा भी है— 'शमो नाम; अन्तरिन्द्रियनिग्रहः। अन्तरिन्द्रियं नाम मनः। तस्य निग्रहः।।' अर्थात् अन्तरिन्द्रिय का निग्रह कर लेना शम है। मन के निग्रह से ही इन्द्रियों का भी निग्रह संभव हो सकता है अन्यथा नहीं। मन का निग्रह साधक के लिए एक भारी उपलब्धि है। वेदान्त में श्रवणादि से व्यतिरिक्त विषयों से मन को निगृहीत कर देना 'शम' है।

वेदों में कथन है कि— ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृष्ययेकं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।

मन सूक्ष्म दिव्य ज्योति स्वरूप, तेजस्वी वेगवान्, सुदूर देश देशान्तरों तथा लोक-लोकांतरों में गमन करने वाला महा बलवान् एवं दुर्दुमन है। यदि विपरीत मन वश में हो जाता है तब इसकी चंचलता, शीलता, बलवत्ता और कठिन आग्रहकारिता दूर हो जाती है और वह सरल, शान्त एवं अनुगत विषय की भांति इतना आज्ञाकारी हो जाता है कि फिर जब, जहाँ और जितनी देर तक इसे लगाए यह चुपचाप लग जाता है। मन सदा चंचल रहता है, अतः वृत्तियों की तरंगों को जप, सत्संग, स्वध्याय, ध्यान आदि के द्वारा स्थिर किया जाता है।

दम— आचार्य शंकर ने कहा है— चक्षुरादि ब्रह्मेन्द्रियनिग्रहः ।

अर्थात् चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियों के निग्रह को 'दम' कहा जाता है। जब व्यक्ति का विवेक जाग्रत हो जाता है तब वह अपने मन को वश में कर लेता है तो क्रमवतः इन्द्रियों भी शुद्ध व वश में हो जाती है। शम के पालन से इन्द्रिया स्वतः ही विषयवस्तु से हटकर चित्त अन्तर्मुखी हो जाता है तो इन्द्रियाँ विषयों की ओर से सदैव लौट जाती है या प्रयास पूर्वक इन्द्रियों को विषयों की ओर न जाने देना ही 'दम' है। वर्तमान समय में समस्या का कारण जिह्वा व ज्ञानेन्द्रिय इन्द्रियों का असंयमित होना। मानव इन्हीं इन्द्रियों के बहकावे में ऐसे दुष्कर्म करने को आतुर हो जाता है, जिनसे मानव जीवन के समक्ष संकट खड़ा हो जाता है। अतः दम का पालन करना अति आवश्यक है।

उपरति— तात्पर्य उपराम व विरति हो जाना है। वस्तु की प्राप्ति हो जाने पर भी उदासीन भाव धारण करना एवं इन्द्रियों को विषयों से हटाकर सभी कामनाओं से शून्य हो जाना उपरति है। अर्थात् जागतिक वस्तु में प्रीति तथा आसक्ति का न होना ही उपरति है। आचार्य शंकर कहते हैं कि— उपरमः कः स्वधर्मानुष्ठानभवे।

स्वधर्म यानि अपने धर्म का अनुष्ठान करना। अर्थात् जागतिक वस्तु विषयों से उपराग यानि राग रहित होकर अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार जीवनचर्या निर्वाह करना ही उपरति है। संसार हमारे लिए सहायक व बाधक दोनों है, निर्भर करता है कि हमारा प्रत्यक्षीकरण कैसा है। संसार में अनासक्त भाव से रहना एवं अपने दृष्टिकोण को बदलना, यही उपरति है। अतः विचारशील प्राणियों को चाहिए की अनन्त सुख को प्राप्त करने के लिए क्षणिक विषय वस्तुओं के सुखों का त्याग कर योग मार्ग की ओर बढ़ने का प्रयास करें।

तितिक्षा— समस्त द्वन्द्वों को सहन करते हुए अपने ध्येय या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधना में डटे रहने का नाम तितिक्षा है। कहा गया है कि— 'शीतोष्णसुख दुःखादिसहिष्णुत्वम्'। अर्थात् शीत, उष्ण, सुख, दुःख, मान, अपमान आदि द्वन्द्वों को धैर्य धारण पूर्वक सहन कर लेना ही तितिक्षा है। तितिक्षा का दूसरा नाम तप है— 'तपो द्वन्द्व सहनम्'। सभी प्रकार के द्वन्द्वों को सहन तप है, तप के बिना साधना सिद्धि नहीं होती है। आध्यात्मिक जगत में तप या तितिक्षा का बहुत महत्व है। अतः द्वन्द्वों से अविभूत न होकर पुरुषार्थ साधना में तत्पर रहना ही योग साफल्य का लक्षण है। कारण यह है कि— 'नातपस्विनोः योग सिद्धति'। अर्थात् तितिक्षा किए बिना योगसिद्धि कदापि संभव नहीं हो सकती। अतएव साधक को कठिन अभ्यास करना चाहिए। संसार में तितिक्षा मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रमुख साधनों में से एक है। तितिक्षा के द्वारा मन, वाणी आदि देहन्द्रियों को तपाने से जन्मान्तरों के पाप समूह समाप्त हो जाते हैं।

श्रद्धा— 'गुरुवेदान्त वाक्यादिषु विश्वासः श्रद्धा'। वेद, वेदान्त व गुरु वाक्यों में दृढ़ निष्ठा एवं अटल विश्वास का नाम श्रद्धा है। यदि मनुष्य यह विश्वास करे कि परमेश्वर असीम आनन्द दाता है, तब उसका यह विश्वास उसे आनन्द एवं ब्रह्मज्ञान प्राप्त कराकर मोक्ष का भागी बना सकता है। इसलिए कहा है— 'संशयात्मा विनश्यति'। अर्थात् जो संशयात्मा है उसका उत्थान तो नहीं होता किन्तु पतन अवश्य हो जाता है। इसमें किंचित मात्र संदेह नहीं है।

हृदय में श्रेष्ठ गुणों के प्रति हमारी दिव्य व सुखदायी अनुभूति श्रद्धा है। श्रद्धा में विश्वास, प्रेम, भक्ति निहित होती है। श्रद्धा आत्मा की चीज है श्रद्धा वह प्रकाश है जो सत्य पथ के मार्ग का दर्शन कराता है। श्रद्धा के तीन प्रकार कहे गये हैं—

- सात्विक श्रद्धा— श्रेष्ठ गुणों व आदर्शों के प्रति जो श्रद्धा होती है उसे सात्विक श्रद्धा कहते हैं। जो हमें अन्धकार में प्रकाश दिखाने का कार्य करती है।
- राजसिक श्रद्धा— सांसारिक वस्तु जो हमारे स्वार्थों से निहित होती है उसके प्रति श्रद्धा राजसिक श्रद्धा होती है। ऐसी श्रद्धा हमारे मन की चंचलता बढ़ती है।
- तामसिक श्रद्धा— कुविचारों, असुरों के प्रति श्रद्धा, जो हमे अपने लक्ष्यों से विमुख करती है, वो तामसिक श्रद्धा कहलाती है।

मानव जीवन में सबसे उच्च व समर्थ शक्ति 'श्रद्धा' की ही है। मनः स्थिति को परिस्थितियों का सृजन कर्ता कहा गया है एवं आत्मा को उत्कृष्टता, श्रद्धा और विश्वासरूपी दिव्यजननी और जनक की अनुकम्पा का फल माना जा सकता है। लोक व्यवहार में कहा जाता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप ही है। श्रद्धा के विकास करने की विद्या है— उपासना, स्वाध्याय, सत्संग। अतः योगी को संशय रहित निश्चयात्मक होना चाहिए क्योंकि यही उत्थान का हेतु होता है।

समाधान— चित की एकाग्रता का नाम है समाधान । समाधान अर्थात् परमेश्वर में अपने चित्त को निरंतर स्थापित करने का अभ्यास है। क्योंकि हमारे चित्त में कई जन्मों के संस्कार विद्यमान हैं जिससे हमेशा वासना की नई-नई तरंगें उठती रहती हैं। जो बहिर्मुखी हैं जो सदा संसार की ओर भागती हैं। इसलिए मन सदा चंचल बना रहता है। इन वृत्तियों की तरंगों को सर्वथा रोकने के लिए जो उपाय होते हैं उसी को समाधान कहते हैं। धर्म ऐसी वस्तु नहीं है कि दवाई की गोली के समान निगल ली जाय। इसके लिए लगातार तथा कड़े अभ्यास की आवश्यकता है। निरन्तर अभ्यास से हिंसक से हिंसक पशु भी काबू में आ जाता है तब मनुष्य का मन क्यों नहीं आ सकता है। जगत के महान एवं कठिन कार्य अभ्यास से पूरे होते हैं। अभ्यास से मनुष्य नहीं पशु—पक्षी तक असंभव कार्य कर डालते हैं, यह सत्य है कि पूर्व संचित बहिर्मुखी संस्कार इस अभ्यास में बाधा पहुँचाते हैं किन्तु संकल्पपूर्वक अभ्यास से धीरे-धीरे वह भी शांत होकर समाधि अवस्था की सिद्धि करते हैं। महर्षि पातंजलि समाधिपाद में चित के शांति के लिए तीन उपाय बताये हैं—

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारसेवितो दृढभूमिः ।

- दीर्घ काल— लंबे समय तक अभ्यास करना
- नैरन्त— अभ्यास में निरंतरता का समावेश हो
- सत्कारोवितो— श्रद्धा भाव से अभ्यास करना

भावार्थ है कि अभ्यास को श्रद्धा पूर्वक, लगन व उत्साहपूर्वक करते हुए अवस्था को दृढ़ बनाना चाहिए। अभ्यासी को बिना उकताए, बिना घबराए लगे रहना चाहिए। अभ्यास दृढ़ हो जाने से बहिर्मुखी वृत्तियाँ विपरीत प्रभाव नहीं डाल पाती। जिससे चित्त स्थिर हो जाता है।

उपसंहार— उल्लासित भूत, भविष्य और वर्तमान की सुखद संभावनाओं का निर्माण अन्तःकरण के निज क्षेत्र में विनिर्मित होता है। इसी का महत्व, मर्म, उपार्जन, अभिव धर्म सिखाने के लिए भूतकाल की कथा-गाथाओं को पुरातन उपाख्यानों में पुराण के नाम से जाना जाता है। ब्रह्म विज्ञान के, आत्म-विज्ञान को गूढ़ रहस्य को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि तत्त्वदर्शियों ने वेदान्त प्रतिपादन सनातन सत्य को अयमात्मा ब्रह्म-प्रज्ञान ब्रह्म, तत्वमसि, सोऽहम्, शिवोऽहम्, सच्चिदानन्दोऽहम् आदि सूत्र में घोषित किया है। पतन से बचने और उत्थान अपनाने का सुनिश्चित उपाय बताते हुए शास्त्रकार इस उत्तरदायित्व को मनुष्य के कंधे पर ही लाद देते हैं। वह कहते हैं— 'उद्धरेत् आत्मनात्मानं नात्मानभवसादयेत्' अर्थात् अपना उद्धार पतन की मुहिम हर मनुष्य स्वतः ही संभालता है। परिस्थितियाँ तो उसका अनुमान भर करती हैं। इसी स्वाधीनता के सहारे वह अपने भाग्य का निर्माता बन सकने में पूर्णतया सफल होता है। वह जैसे व्यक्तित्व एवं लक्ष्य के प्रति अपनी आस्था सुदृढ़ करता है, वह वैसा ही बनता जाता है। अतः ब्रह्मविद्या चेतना को श्रेष्ठता के साथ जोड़ देने के प्रयास को योग कहते हैं। गीता में भी कथन है— 'आत्मैवह्यात्मन् बन्धु आत्मैव रिपुरात्मनः'। अर्थात् मनुष्य स्वतः ही अपना मित्र व शत्रु और उत्थान एवं पतन की कुंजी पूरी तरह से सुरक्षित एवं सुनिश्चित रूप में अन्तःकरण में रखी रहती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ—

- अभिमन्यु डॉ.— वेदान्त विमर्श, शक्ति नगर, नई दिल्ली, 1991
- आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, मनः स्थिति बदले तो परिस्थिति बदले, युग निर्माण योजना मथुरा, 2007
- उपाध्याय, पदमभूषण आचार्य बलदेव— भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर 3713 रवीन्द्रपुरी, वाराणसी, 1997
- गोयन्दका, हरिकृष्णदास— योगदर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर, वि. सं.— 2035
- आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, वाङ्मय खण्ड— 57, मनस्विता, प्रखरता और तेजस्विता, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा, 1998
- आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, वाङ्मय खण्ड— 4, साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा, 1998
- पण्डया डॉ. प्रणव— आध्यात्मिक चिकित्सा: एक समग्र उपचार पद्धति, श्री वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुज हरिद्वार, 2005
- शांकर भाष्य— श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 273005, सं.— 2052
- सरस्वती स्वामी विज्ञानानन्द— योग विज्ञान, योगनिकेतन ट्रस्ट मुनिकी रेली ऋषिकेश— 249192, टिहरी गढ़वाल, हिमालय उ० प्र०